International Journal of Enhanced Research in Management & Computer Applications
ISSN: 2319-7471, Vol. 4 Issue 7, July-2015

मध्यकालीन भारत की शासन एवं न्यायिक प्रणाली

Ashok Kumar
Research Scholar, Dept. of History, MDU Rohtak, Haryana

परिचय

सल्तनत काल में भारत में एक नई प्रशासनिक व्यवस्था की शुरुआत हुई, जो मुख्य रूप से अरबी-फ़ारसी पद्धति पर आधारित थी। सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था पूर्ण रूप से इस्लाम धर्म पर आधारित थी। प्रशासन में उलेमाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। 'ख़लीफ़ा' इस्लामिक संसार का पैगम्बर के बाद का सर्वोच्च नेता होता था। प्रत्येक सुल्तान के लिए आवश्यक होता था कि, ख़लीफ़ा उसे मान्यता दे, फिर भी दिल्ली सल्तनत के तुर्क सुल्तानों ने ख़लीफ़ा को नाममात्र का ही प्रधान माना। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था, जिसने 1229 ई में बग़दाद के ख़लीफ़ा को 'नाइब' (सहायक) कहा। अलाउद्दीन ख़िलजी ने अपने को ख़लीफ़ा का नाइब नहीं माना। क़ुतुबुद्दीन मुबारक़ ख़िलजी पहला ऐसा सुल्तान था, जिसने ख़िलाफ़त के मिथक को तोड़कर स्वयं को ख़लीफ़ा घोषित किया। मुहम्मद तुग़लक़ ने अपने शासक काल के प्रारम्भ में ख़लीफ़ा को मान्यता नहीं दी, किन्तु शासन के अन्तिम चरण में उसने ख़लीफ़ा को मान्यता प्रदान कर दी। फ़िरोज़शाह तुग़लक़ ने अपने सिक्कों पर ख़लीफ़ा का नाम उत्कीर्ण करवाया था।

सुल्तान

सुल्तान की उपाधि तुर्की शासकों द्वारा प्रारम्भ की गयी। महमूद ग़ज़नवी ऐसा पहला शासक था, जिसने सुल्तान की उपाधि धारण की। दिल्ली में अधिकांश ने अपने को ख़लीफ़ा का नायक पुकारा, परन्तु कुतुबुद्दीन मुबारक ख़िलजी ने स्वयं को ख़लीफ़ा घोषित किया। ख़िज़्र ख़ाँ ने तैमूर के पुत्र शाहरुख का प्रभुत्व स्वीकार किया और 'रैय्यत-ए-आला' की उपधि धारण की। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी मुबारक शाह ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया और शाह सुल्तान की उपाधि ग्रहण की। सुल्तान केन्द्रीय प्रशासन का मुखिया होता था। सल्तनत काल में उत्तराधिकार का कोई निश्चत नियम नहीं था, किन्तु सुल्तान को यह अधिकार होता था कि, वह अपने बच्चों में किसी एक को भी अपना उत्तराधिकारी चुन सकता था। सुल्तान द्वारा चुना गया उत्तराधिकारी यदि अयोग्य है तो, ऐसी स्थिति में सरदार नये सुल्तान का चुनाव करते थे। कभी-कभी शक्ति के प्रयोग से सिंहासन पर अधिकारी किया जाता था। दिल्ली सल्तनत में सुल्तान पूर्ण रूप से निरंकुश होता था। उसकी सम्पूर्ण शक्ति सैनिक बल पर निर्भर करती थी। सुल्तान सेना का सर्वोच्च सेनापति एवं न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। सुल्तान 'शरीयत' के अधीन ही कार्य करता था।

अमीर

सल्तनत में सभी प्रभावशाली पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सामान्य संज्ञा अमीर थी। अमीरों का प्रभाव सुल्तान पर होता था। सुल्तान को शासन करने के लिए अमीरों को अपने अनूकूल किये रहना आवश्यक होता था। अमीरों का प्रभाव उस समय बढ़ जाता था, जब सुल्तान अयोग्य, निर्बल या अल्पव्यस्क हो। वैसे बलबन और अलाउद्दीन ख़िलजी के समय में अमीर प्रभावहीन हो गये थे। प्रायः नये राजवंश के सत्ता में आने पर पुराने अमीरों को या तो मार दिया जाता था या फिर उन्हें छोटे पद दे दिये जाते थे। मुहम्मद तुग़लक़ के काल में हुए विद्रोह में अमीरों का सर्वाधिक योगदान था। इसलिए उसने पुराने अमीरों को कमज़ोर करने की दृष्टि से मिश्रित जनजातीय अधिकार पर पदाधिकारियों की एक नई व्यवस्था

स्थापित की। अमीरों का प्रशासन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता था। लोदी वंश के शासन काल मे अमीरों का महत्त्व अपने चरमोत्कर्ष पर था।

मंत्रिपरिषद

यद्यपि सत्ता की धुरी सुल्तान होता था, फिर भी विभिन्न विभागों के कार्यों के कुशल संचालन हेतु उसे एक मंत्रिपरिषद की आवश्यकता पड़ती थी, जिसे सल्तनत काल में 'मजलिस-ए-खलवत' कहा जाता था। मंत्रिपरिषद की सलाह मानने के लिए सुल्तान बाध्य नहीं होता था। परन्तु सुल्तान निर्बल या अयोग्य हो तो सारी शक्ति मंत्री अपने हाथ में केन्द्रित कर लेते थे। वह इनकी नियुक्ति एवं पदमुक्ति अपनी इच्छानुसार कर सकता था। 'मजलिस-ए-ख़ास' में 'मजलिस-ए-खलवत' की बैठक हुआ करती। यहाँ पर सुल्तान कुछ ख़ास लोगों को बुलाता था। 'बार-ए-ख़ास' में सुल्तान सभी दरबारियों, ख़ानों, अमीरों, मलिकों, और अन्य रईसों को बुलाता था। 'बार-ए-आजम' में सुल्तान राजकीय कार्यों का अधिकांश भाग पूरा करता था। यहाँ पर विद्वान मुल्ला, क़ाज़ी भी उपस्थित रहते थे।

सल्तनकालीन मंत्रिपरिषद में 4 मंत्री महत्त्वपूर्ण थे। ये निम्नलिखित हैं-

1. वज़ीर (प्रधानमंत्री)
2. दीवान-ए-आरिज
3. दीवान-ए-इंशा
4. दीवान-ए-रसालत

न्यायिक सुधार

न्यायशास्त्र कानून (विधि) का सिद्धांत और दर्शन है। न्यायशास्त्र के विद्वान अथवा कानूनी दार्शनिक , विधि (कानून) की प्रवृति, कानूनी तर्क, कानूनी प्रणालियांएवं कानूनी संस्थानों का गहन ज्ञान पाने की उम्मीद रखते हैं। आधुनिक न्यायशास्त्र की शुरुआत 18वीं सदी में हुई और प्राकृतिक कानून, नागरिक कानून तथा राष्ट्रों के कानून के सिद्धांतों पर सर्वप्र थम अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। [1] साधारण अथवा सामान्य न्यायशास्त्र को प्रश्नों के प्रकार के द्वारा उन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है अथवा इन प्रश्नों के सर्वोत्तम उत्तर कैसे दिए जायं इस बारे में न्यायशास्त्र के सिद्धांतों अथवा विचारधाराओं के स्कूलों दोनों ही तरीकों से पता लगाकर जिनकी चर्चा विद्वान करना चाहते हैं। कानून का समकालीन दर्शन, जो सामान्य न्यायशास्त्र से संबंधित हैं, समस्याओं की चर्चा मोटे तौर पर दो वर्गों में करता है[2]

- 1.) कानून की आंतरिक समस्याएं तथा उसी रूप में न्यायिक प्रणाली
- 2.) एक विशिष्ट सामाजिक संस्था के रूप में कानून की समस्याएं जैसा कि यह व्यापक राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति को निर्दिष्ट करती है जिसमें यह विद्यमान है।

न्यायशास्त्र का इतिहास

प्राचीन रोम में न्यायशास्त्र अपने इसी अर्थ में विद्यमान था , यद्यपि अपने उद्भव काल में ही यह विषय *मॉस मायोरम* (पारंपरिक कानून) के *जूस* एक *पेरिटी* थी, मौखिक कानून और रीति-रिवाजों की एक संस्था जिसमें "पिता द्वारा पुत्र को" ये कानून और रीति -रिवाज मौखिक तरीके से प्रेषित दिए जाते थे। प्रेटर्स प्राचीन रोमन सामाज्य में निर्वाहित सरकारी न्यायाधीश इस बात का फैसला करते हुए कि क्या एकक मामले एडिक्टों (घोषणा पत्र), मुकदमा चलाये जाने योग्य मामलों की वार्षिक घोषणा के अनुसार अथवा, असाधारण परिस्थितियों में वार्षिक धारणा-पत्र (एडिक्ट) में अतिरिक्त

नियम अंतर्भुक्त कर कानून की कार्यकारी संस्था की स्थापना करते थे। तत्पश्चात एक आयुडेक्स (न्यायाधीश के लिए लैटिन नाम) मामले के तथ्यों के अनुसार निदान कर निर्णय करता था।

ऐसी आशा की जाती थी कि उनके वाक्य पारंपरिक प्रथाओं की सरल व्याख्या होनी चाहिए , किन्तु प्रभावी रूप से यह एक ऐसी गतिविधि थी कि मोटे तौर पर कानूनी रीति-रिवाज में परंपरागत तरीके से प्रत्येक मामले पर औपचारिक ढंग से पुनर्विचार करने के अलावा शीघ्र ही नए सामाजिक दृष्टान्तों के आधार पर सामंजस्यपूर्ण ढंग से अनुकूल तरीके से रूपांतरित कर न्यायसंगत व्याख्या बन गई। यह कानून तब नई विकासवादी *संस्थानों* (क़ानूनी अवधारणाओं) के जरिये लागू कर दिया गया , जबकि यह पारंपरिक परिकल्पना के अनुसार ही बरकरार रहा . प्रेयटर्स (निर्वाचित न्यायाधीश) को ईसापूर्व तीसरी सदी में *प्रुडेंट्स* के अयाजकीय (जिन्हें याजकवर्ग से बाहर निकाल दिया जाता था) निकाय द्वारा प्रतिस्थापित कर दिए गए। इस निकाय में प्रवेश योग्यता अथवा अनुभव के प्रमाण के आधार पर शर्त सापेक्ष था।

प्राचीन भारतीय वैदिक समाज में , कानून अथवा धर्म, जिसका अनुपालन हिन्दुओं द्वारा किया जाता था , मनु-स्मृति के द्वारा प्रतिपादित था, जो पाप और उसके निराकार के उपायों को परिभाषित कर ने वाला एक काव्य-संग्रह है। ऐसा कहा जाता है कि इनकी रचना 200 ईसापूर्व से 200 ईस्वीसन के मध्य हुई है। वास्तव में, ये कानून की संहिताएं नहीं हैं किन्तु सामाजिक दायित्वों के प्रति उस युग की कुछ आवश्यक मान्यताएं हैं।

रोमन साम्राज्य के अंतर्गत, कानून के स्कूलों की स्थापना हुई और गतिविधियां लगातार अधिक से अधिक शैक्षणिक (अकादमिक) होती गई। रोमन साम्राज्य के आरंभिक युग से तीसरी शताब्दी के मध्य , कुछ उल्लेखनीय वर्गों द्वारा जिनमें प्रोकुलियंस एवं साविनियंस शामिल थे, एक प्रासंगिक साहित्य की रचना हुई . अध्ययनों की वैज्ञानिक गंभीरता का परिमाण प्राचीनकाल के हिसाब से अभूतपूर्व था तथा बौद्धिक पराकाष्ठा की अनुपम ऊंचाई पर पहुंच गया।

तीसरी सदी के बाद, *ज्यूरिस प्रुडेंशिया* (न्यायपालिका) अधिक आधिकारिकतंत्रिका गतिविधि हो गई जिसके कुछ उल्लेखनीय लेखक हैं। बाइजेंटाइन साम्राज्य (5वीं सदी) के दौरान, कानूनी अध्ययनों को एक बार फिर गंभीरता से लिया गया और इसी सांस्कृतिक आंदोलन से ही जस्टीनियम के कॉर्पस जूरिस सिविल्स का जन्म हुआ।

न्यायिक सुधार (Judicial reform) से आशय किसी देश की न्यायपालिका का राजनीतिक ढंग से पूर्णतः या आंशिक परिवर्तन करना है। न्यायिक सुधार , विधिक सुधार का एक हिस्सा है। विधिक सुधार में न्यायिक सुधार के साथ -साथ कानूनी ढांचे में परिवर्तन, कानूनों में सुधार, कानूनी शिक्षा में सुधार, जनता में विधिक जागरूकता लाना, न्याय का त्वरित एवं सस्ता बनाना आदि भी शामिल हैं। न्यायिक सुधार का लक्ष्य न्यायालयों में सुधार , वकालत advocacy (bar) में परिवर्तन, दस्तावेजों का रखरखाव आदि सम्मिलित है।

न्यायिक संस्था और विधि का शासन आधुनिक सभ्यता और लोकतांत्रिक शासन की आवश्यकता है। यह महत्तवपूर्ण है कि न्याय प्रदान करने के प्रभावी तंत्र को सुनिश्चित करने के जरिए न्याय तंत्र और विधि के शासन में लोगों की आस्था न सिर्फ परिरक्षित है बल्कि उसे बढ़ाने के साथ-साथ उसे हासिल करने का यह सरल रास्ता भी है।

भारत के सन्दर्भ में न्यायिक सुधार

दशकों से भारतीय न्यायतंत्र में सुधारों की आवश्यकता महसूस की जा रही है क्योंकि सस्ता एवं शीघ्र न्याय कुल मिलाकर भ्रामक रहा है। अदालतों में लंबित मामलों को जल्दी निपटाने के उपायों के बावजूद 2 करोड़ 50 लाख मामले लंबित हैं। विशेषज्ञों ने आशंका प्रकट की है कि न्याय तंत्र में जनता का भरोसा कम हो रहा है और विवादों को निपटाने के लिए अराजकता एवं हिंसक अपराध की शरण में जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे महसूस करते हैं कि इस नकारात्मक प्रवृत्ति को रोकने और इसके रुख को पलटने के लिए न्याय तंत्र में लोगों का भरोसा तुरंत बहाल करना चाहिए।

पिछले पांच दशकों से भारतीय विधि आयोग , संसदीय स्थायी समितियों और अन्य सरकार द्वारा नियुक्त समितियों , उच्चतम न्यायालय की अनेक पीठ , प्रतिष्ठित वकील और न्यायाधीश , विभिन्न कानूनी संघ #संगठन और गैर सरकारी संगठनों जैसे विभिन्न कानूनी स्थापित #सरकारी प्राधिकरणों ने न्याय तंत्र में समस्याओं की पहचान की है और उनको जल्दी दूर करने का आह्वान किया है। फिर भी , ऐसी अनेक सिफ़ारिशों का प्रभावी कार्यान्वयन अब भी लंबित है। गृह मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति के अनुसार (2001) विधि आयोगों की प्राय: 50 s रिपोर्ट कार्यान्वयन की प्रतीक्षा में हैं।

न्यायिक सुधारों का कार्यान्वयन नहीं होने के कारणों में से एक के रूप में न्याय तंत्र को कम बजटीय सहायता का भी उल्लेख किया जाता रहा है। 10वीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) के दौरान न्याय तंत्र के लिए 700 करोड़ रुपए आवंटित किए गए थे जो कुल योजना व्यय 8,93,183 करोड़ रुपए का 0.078 प्रतिशत था। नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान तो आवंटन और कम था जो सिर्फ 0.071 प्रतिशत था। यह माना गया है कि इतना अल्प आवंटन न्याय तंत्र की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए भी अपर्याप्त है। यह कहा जाता है कि भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का सिर्फ 0.2 प्रतिशत ही न्याय तंत्र पर खर्च करता है। प्रथम राष्ट्रीय न्यायिक वेतन आयोग के अनुसार , एक को छोड़कर सभी राज्यों ने अधीनस्थ न्याय तंत्र के लिए अपने संबंधित बजट का 1 s से भी कम उपलब्ध कराया है जो अधिक संख्या में लंबित मामलों से पीड़ित हैं।

परंतु संसाधनों का अभाव ज्यादातर नागरिकों, खासतौर पर उन वंचित तबकों, को न्याय या किसी अन्य मूल अधिकार से इंकार करने का कारण नहीं हो सकता जिनकी अस्पष्ट कानूनों और प्रभावी बाधा के रूप में का र्य करने वाली उच्च लागत के कारण न्याय तक सीमित पहुंच है। न्याय में देरी न्याय देने से इंकार है इस बात को मानते हुए उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने पी. रामचंद्र राव बनाम कर्नाटक (2002) मामले में हुसैनआरा मामले की इस बात को दोहराया कि, शीघ्र न्याय प्रदान करना, आपराधिक मामलों में तो और भी अधिक शीघ्र , राज्य का संवैधानिक दायित्व है , तथा संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 21, 19, एवं 14 तथा राज्य के निर्देशक सिध्दांतों से भी निर्गमित न्याय के अधिकार से इंकार करने के लिए धन या संसाधनों का अभाव कोई सफाई नहीं है। यह समय की मांग है कि भारतीय संघ और विभिन्न राज्य अपने संवैधानिक दायित्वों को समझें और न्याय प्रदान करने के तंत्र को मजबूत बनाने की दिशा में कुछ ठोस कार्य करें।

अन्य प्रमुख कारकों में पिछले दशकों से न्याय तंत्र के बुनियादी ढांचे में सुधार लाने की उपेक्षा , न्यायाधीशों की रिक्तियों को भरने में असाधारण देरी और आबादी एवं न्यायाधीशों के बीच बहुत निम्न अनुपात शामिल हैं। न्याय तंत्र के कार्य निष्पादन को सुधारने के लिए इन कारकों पर तुरंत ध्यान देने की ज़रूरत है।

120वें विधि आयोग की रिपोर्ट में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि भारत, दुनिया में आबादी एवं न्यायाधीशों के बीच सबसे कम अनुपात वाले देशों में से एक है। अमरीका और ब्रिटेन में 10 लाख लोगों पर करीब 150 न्यायाधीश हैं जबकि इसकी तुलना में भारत में 10 लाख लोगों पर सिर्फ 10 न्यायाधीश हैं। अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने सरकार को न्यायाधीशों की संख्या में 2007 तक चरणबध्द ढंग से वृद्धि करने का निर्देश दिया था ताकि 10 लाख की आबादी पर 50 न्यायाधीश हो जाएं, जो अब तक पूरा नहीं किया गया है।

न्यायाधीशों की अनुमोदित रिक्तियों को भरने के लिए भी बहुत कुछ करने की ज़रूरत है। केवल प्रक्रियागत देरी के कारण न्यायाधीशों के 25 प्रतिशत पद खाली पड़े हैं। उच्च न्यायालयों में 6 जनवरी 2009 को 886 न्यायाधीशों की नियुक्ति की मंजूरी थी मगर वहां सिर्फ 608 न्यायाधीश कार्य कर रहे थे जिससे स्पष्ट है कि न्यायाधीशों के 278 पद रिक्त पड़े थे। इसी प्रकार, पहली मार्च 2007 को 11,767 अधीनस्थ न्यायाधीश कार्य कर रहे थे और 2710 पद रिक्त पड़े थे।

हालांकि, हाल के वर्षों में अदालतों की कार्य प्रणाली में सुधार लाने के लिए उपाय किए गए हैं। केंद्र सरकार ने फरवरी 2007 में बेहतर प्रबंधन के लिए न्याय प्रदान करने के तंत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के लिए देश की सभी जिला एवं अधीनस्थ अदालतों के कम्प्यूटरीकरण और उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के बुनियादी ढांचे को उन्नत करने के लिए योजना मंजूर की थी। 442 करोड़ रुपए की यह योजना दो वर्ष में

पूरी की जानी थी। इस परियोजना के तहत अब तक न्यायिक अधिकारियों को 13,365 लेपटॉप, करीब 12,600 न्यायिक अधिकारियों को लेज़र प्रिंटर उपलब्ध कराए जा चुके हैं तथा 11,000 न्यायिक अधिकारियों एवं अदालतों के 44,000 कर्मियों को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी उपकरण इस्तेमाल करने का प्रशिक्षण दिया जा चुका है। 489 जिला अदालतें और 896 तालुका अदालतों के परिसर में ब्रॉडबैण्ड संपर्कता उपलब्ध कराई गई है। इस परियोजना के तहत , देश में सभी अदालत परिसरों में कम्प्यूटर कक्ष स्थापित किए जाने हैं। अदालतों के ई-समर्थ बनने से अधिक दक्षता से कार्य करने और मुकदमों का तेजी से निपटारा करने में मदद मिलेगी। इससे उच्च अदालतों के साथ इन अदालतों का नेटवर्क बनेगा तथा इस प्रकार अधिक जवाबदेही सुनिश्चित होगी।

ढांचगत सुविधाओं के विकास के लिए केंद्र प्रायोजित ए क और योजना 1993-1994 से चल रही है जिसमें अदालत के भवनों और न्यायिक अधिकारियों के लिए आवासीय जगहों की स्थापना शामिल है। इस योजना के तहत 2006-07 से 2008-09 तक राज्यों को 286 करोड़ 19 लाख रुपए जारी किए गए हैं। 10 वर्ष की अवधि के लिए ऐसी आवश्यकताओं के अनुमानों वाली सापेक्ष योजना के आधार पर 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान न्याय तंत्र के लिए परिव्यय की मांग की गई है। इस बीच , एक से अधिक पारी में काम करके अदालतों के मौजूदा बुनियादी ढांचे के अधिकतम इस्तेमाल से मुकदमों को तेजी से निपटाया जा सकता है। गुजरात ऐसा राज्य है जहां सांध्यकालीन अदालतें कार्य कर रही हैं और सराहनीय परिणाम दे रही हैं।

11वें वित्त आयोग की सिफारिश पर बनाई गई फास्ट ट्रैक अदालतें भी लंबित पड़े मुकदमों को निपटाने में प्रभावी सिध्द हुई हैं। इसके मद्देनज़र सरकार ने राज्यों को केंद्रीय सहायता उपलब्ध करवा कर सत्र स्तर पर संचालित 1,562 फास्ट ट्रैक अदालतों की समय अवधि बढ़ा दी है। केंद्रीय विधि मंत्रालय के अनुसार , इन अदालतों में 28 लाख 49 हजार मुकदमें स्थानांतरित किए गए थे जिनमें से 21 लाख 83 हजार का निपटारा हो चुका है। केंद्र सरकार का , ग्रामीण आबादी को उसके घर पर ही न्याय प्रदान करने के लिए ग्राम न्यायालय अधिनियम , 2008 के तहत पंचायत स्तर पर 5 हजार से अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित करने का प्रस्ताव है। इन अदालतों में सरल एवं लचीली प्रक्रिया अपनाई जाएगी ताकि इन मुकदमों की सुनवाई और निपटारा 90 दिन के भीतर किया जा सके।

वैकल्पिक विवाद निवारण का सहारा लेने से विवाचन , बातचीत, सुलह और मध्यस्थता के जरिए लंबित मामलों में कमी लाने में बहुत मदद मिल सकती है। अमरीका और कई अन्य देशों में विवाद समाधन तंत्र के रूप में वैकल्पिक विवाद निवारण बहुत सफल रहा है। भारत में विवाचन सुलह अधिनियम 1996 पहले से ही है और सिविल प्रक्रिया संहिता को भी संशोधित किया गया है। हालांकि, पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित मध्यस्थता एवं सुलह कराने वालों के न होने से इन उपायों पर बुरा असर पड़ता है। न्याय की मुख्यधारा में वैकल्पिक तंत्र को विकसित करने के मद्देनज़ र न्यायिक अधिकारियों और वकीलों को प्रशिक्षित करने की ज़रूरत है।

निष्कर्ष

इन सभी उपायों को और सुदृढ़ करने तथा इनका विस्तार करने की आवश्यकता है लेकिन सुधारों को अमलीजामा पहनाते हुए भावी आवश्यकताओं को ज़हन में रखना होगा क्योंकि शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप अपने कानूनी अधिकारों के बारे में समाज के और अधिक तबकों के जागरूक होने से भविष्य में मुकदमेबाजी और बढ़ेगी।

सरकार को समग्र न्याय प्रक्रिया को भी दिमाग़ में रखना होगा जो मुकदमों को निपटाने में बाधा डालने के लिए अंतहीन जिरह संबंधी अपील और देरी करने वाले वकीलों की भूमिका को अनुमति देती है। न्याय में देरी को कम करने के जरिए वाद प्रक्रिया और सिविल प्रक्रिया में बदलाव लाने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन अधिनियम), 2002 के बावजूद, स्थिति अब भी संतोषजनक होने से कोसों दूर है। तुच्छ मुक़दमेबाजी के मसले से भी निपटना होगा और लागत में अत्यधिक वृद्धि करना इसका एक रास्ता हो सकता है। पुलिस जांच तंत्र को मजबूत और आधुनिक बनाने की ज़रूरत है जिससे न्याय तंत्र पर बोझ कम होगा।

न्याय प्रदान करने के तंत्र की सभी जटिलताओं और सूक्ष्म अंतरों पर साकल्यवादी रूप से विचार करने से यह स्पष्ट है कि न्याय तंत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान संकट एवं त्रुटियों पर विचार करना होगा।

सन्दर्भ

1. "न्यायशास्त्र", ब्लैक'स लॉ डिक्शनरी
2. शाइनर, "कानून के दार्शनिक", कैंब्रिज डिक्शनरी ऑफ़ फिलोज़ोफी
3. सॉपर, "कानूनी वस्तुनिष्ठवाद", कैंब्रिज डिक्शनरी ऑफ़ फिलोज़ोफी
4. मूर, "क्रिटिकल लीगल स्टडीज़", कानूनी गंभीर कैंब्रिज डिक्शनरी ऑफ़ फिलोज़ोफी
5. ब्रूक्स, "डॉर्किन की समीक्षा और उनके आलोचक डॉर्किन के उत्तर के साथ", मॉडर्न लॉ रिव्यू, खंड 69 नं. 6
6. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, 2न्ड 1989
7. शेलेंस, "प्राकृतिक कानून पर अरस्तू."
8. जफा, थौमिस्म एण्ड एरिस्टोटेलिनिस्म.
9. एच. राक्क्हम, ट्रांस., निकोमचेन एथिक्स, लोएब क्लासिकल लाइब्रेरी; जे. ए. के. थॉमसन, ट्रांस. (ह्यूग टेडेनिक द्वारा संशोधित), निकोमचेन एथिक्स, पेंगुइन क्लासिक्स.
10 जो सैक्स, ट्रांस., निकोमचेन एथिक्स, फोकस प्रकाशन
11 "निकोमचेन एथिक्स" बेके. द्वितीय अध्याय 6
12 टेरेंस इरविन, ट्रांस. निकोमचेन एथिक्स, 2 एड., हैकेट प्रकाशन
13 निकोमचेन एथिक्स, बीके. वी, अध्याय 3